

उन्नीसवीं सदी में बनारस में शिक्षा व्यवस्था

करवीर सिंह

शोधार्थी, इतिहास विभाग

महाराज बलवन्त सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय

गंगापुर, वाराणसी

महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ वाराणसी

बनारस, जिसे आज वाराणसी के नाम से जाना जाता है, प्राचीन काल से ही ज्ञान, संस्कृति और शिक्षा का केंद्र रही है। यह नगर न केवल धार्मिक और आध्यात्मिक महत्व रखता है, बल्कि शिक्षा के क्षेत्र में भी इसकी विशिष्ट पहचान है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक, बनारस ने भारतीय शिक्षा प्रणाली के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आधुनिक काल में शिक्षा प्रणाली में अनेक बदलाव आए, जिससे बनारस की पारंपरिक शिक्षा व्यवस्था भी प्रभावित हुई। ब्रिटिश शासन के दौरान पारंपरिक गुरुकुल प्रणाली के साथ-साथ आधुनिक शिक्षा संस्थानों की स्थापना हुई, जिससे शिक्षा के क्षेत्र में एक नए युग की शुरुआत हुई।

बनारस (वर्तमान वाराणसी) प्राचीन काल से ही शिक्षा और संस्कृति का एक महत्वपूर्ण केंद्र रहा है। 18वीं और 19वीं सदी के दौरान भी यह भारतीय ज्ञान परंपरा के संरक्षण और प्रसार का प्रमुख स्थान बना रहा। इस काल में शिक्षा व्यवस्था मुख्य रूप से परंपरागत गुरुकुल प्रणाली पर आधारित थी, लेकिन समय के साथ आधुनिक शिक्षा प्रणाली का भी प्रभाव पड़ने लगा।

18वीं सदी में बनारस में शिक्षा का मुख्य आधार वेदों, पुराणों, दर्शन, ज्योतिष और संस्कृत व्याकरण का अध्ययन था। यह शिक्षा प्रणाली गुरुकुलों और पंडितों द्वारा संचालित पाठशालाओं में दी जाती थी। विद्यार्थी दीर्घकाल तक गुरुओं के सान्निध्य में रहकर अध्ययन करते थे। मुख्यतः शिक्षा मौखिक रूप से दी जाती थी, और पाण्डित्य पर विशेष ध्यान दिया जाता था। बनारस में शिक्षा का एक प्रमुख केंद्र वेदों और शास्त्रों का अध्ययन था, जिसके कारण देशभर से छात्र और विद्वान यहाँ आते थे। बनारस के विद्वानों की प्रतिष्ठा इतनी अधिक थी कि यहाँ अध्ययन करने वाले छात्र भारत के अन्य भागों में भी प्रतिष्ठित विद्वान माने जाते थे। काशी में कई प्रसिद्ध संस्कृत विद्यालय थे, जहाँ वेदांत, न्याय, मीमांसा, व्याकरण और ज्योतिष की उच्च शिक्षा दी जाती थी।

19 वी सदी में, ब्रिटिश शासन के प्रभाव में पारम्परिक शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन आने लगे 1791 में जोनाथन डंकन ने संस्कृत कॉलेज, बनारस की स्थापना की, जिसका उद्देश्य भारतीय पारम्परिक ज्ञान को संरक्षित करना और ब्रिटिश प्रशासन के लिए भारतीय समाज को समझने में सहायता प्राप्त करना था यह कॉलेज बनारस में आधुनिक शिक्षा प्रणाली की ओर पहला बड़ा कदम था। 19 वी सदी के मध्य तक अंग्रेजों ने भारत में आधुनिक शिक्षा प्रणाली को बढ़ावा देना सुरु किया। मिशनरी स्कूलों और अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार ने बनारस की पारम्परिक शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित किया।

18 वीं व 19 वीं सदी में बनारस आधुनिक शिक्षा का प्रमुख केन्द्र बना रहा। इस दौरान परम्परागत गुरुकुल प्रणाली और अंग्रेजों द्वारा स्थापित आधुनिक शिक्षा प्रणाली के बीच एक अद्वितीय समन्वय देखने को मिला संस्कृत कॉलेज की स्थापना, अंग्रेजी स्कूलों का आगमन और मिशनरी शिक्षा के प्रभाव ने बनारस में शिक्षा व्यवस्था को नया स्वरूप दिया इस काल खण्ड में बनारस न केवल पारम्परिक भारतीय शिक्षा का संरक्षक बना, बल्कि आधुनिक शिक्षा प्रणाली को भी अपनाने लगा, जिससे यह एक प्रमुख शैक्षिक केन्द्र के रूप में विकसित हुआ।

अठारहवीं सदी में बनारस में शिक्षा—

18 वीं सदी में बनारस में संस्कृत शिक्षा का वही प्रबन्ध था जो मुगल काल में या उसके भी पहले से चला आ रहा था। विद्यार्थियों को बनारस के गुरु निःशुल्क पढ़ाते थे साथ ही उनके भोजन और रहने का प्रबन्ध भी करते थे। इसमें जो कुछ उनका व्यय होता था उसको पूरा करने के लिये महाजनों तथा राजाओं की सहायता अपेक्षित होती थी। जान पड़ता है, यह सहायता पर्याप्त रूप में मिलती थी। जब से पेशवों का बनारस से सम्बन्ध हुआ तब से तो दक्षिणी पण्डितों के सहायतार्थ महाराष्ट्र तथा मराठों की दूसरी अमलदारियों से भी अन्नसत्र और पाठशालाएँ चलाने के लिए काफी रूपए आते रहे। अठ्ठारहवीं सदी के अन्त में अंग्रेजों ने बनारस संस्कृत कॉलेज खोलने की सोची (एस. एन. सेन, संस्कृत कॉलेज एट बनारस, जर्नल गंगानाथ रिसर्च इं., मई 1944, पृ. 315 से)। डॉ. मोतीचन्द्र ने कहा है कि कॉलेज चलाने की बात पहले पहल किसके दिमाग में आयी यह कहना तो कठिन है। संस्कृत कॉलेज के प्रथम आचार्य काशीनाथ लॉर्ड मॉर्निंगटन के नाम अपने 1799 ईस्वी वाले पत्र में लिखते हैं कि बनारस संस्कृत कॉलेज चलने की बात पहले उन्होंने ही चलायी थी। उनके इस कथन में कितना तथ्य है यह तो नहीं जाना जा सकता पर उनका यह दावा एकदम से टाला भी नहीं जा सकता है। यह भी हो सकता है कि चार्ल्स विलकिंस ने, जिन्हें संस्कृत पढ़ने के लिए एक पंडित ढूढ़ने में बड़ी कठिनाई पड़ी, यह सुझाव वारेन हेस्टिंग्स के सामने रखा हो। काशीनाथ पण्डित का अपने पत्र में यह कहना है कि अपनी कलकत्ता यात्रा कॉलेज के सम्बन्ध में प्रस्ताव रखने के लिए उन्हें स्थगित करनी पड़ी और इसके बाद उन्होंने यह प्रस्ताव जानेथन डंकन के पास रखा। पर यह बात किसी दूसरे कागज पत्र में नहीं मिलती। जो भी हो पहली जनवरी 1792 में एक पत्र द्वारा डंकन ने बनारस में संस्कृत शिक्षा के लिए एक कॉलेज खोलने का प्रस्ताव रखा। डंकन का कॉलेज स्थापना करने में पहला उद्देश्य तो यह था कि पण्डितों और विद्यार्थियों की सहायता से अनेक विषयों पर संस्कृत की हस्तलिखित पुस्तकें इकट्ठी की जायँ और दूसरा यह कि इससे अंग्रेजों की हिन्दुओं में ख्याति बढ़ेगी और कॉलेज से ऐसे पण्डित निकल सकेंगे जो हिन्दू कानून को समझने में अंग्रेज जजों की सहायता कर सकेंगे। कॉलेज चलाने में केवल चौदह हजार साल का खर्च था। गवर्नर जनरल ने तुरन्त उनकी बात मान ली और कॉलेज के खर्च के लिए बीस हजार की मंजूरी दे दी। समयान्तर में संस्कृत पाठशाला की स्थापना हो गयी इसमें पढ़ाने के लिए आठ पण्डित रखे गये और काशीनाथ प्रधान आचार्य नियुक्त हुए। इनका वेतन दो सौ रुपया मासिक नियत किया गया।

इस पाठशाला की देखरेख का भार बनारस के रेजिडेंट और उसके डिप्टी पर छोड़ दिया गया। डंकन ने इस बात का पूरा यत्न किया कि ब्राह्मण पण्डित, जिन पर इस पाठशाला की सफलता निर्भर थी, किसी तरह से अप्रसन्न न हो जायँ। इसके लिए पाठशाला में ब्राह्मण पण्डित ही नियुक्त किये गये और यह भी निश्चय किया गया कि स्मृति और धर्म – शास्त्र के परीक्षक भी ब्राह्मण ही हों।

इस पाठशाला के पहले सात साल के कागज पत्र नहीं मिलते। डंकन 1795 में बनारस से बम्बई चले गये। 1798 में पाठशाला के प्रबन्ध का भार एक कमेटी पर आ पड़ा, जिसमें बनारस के कमिश्नर सेमुअल डेविस और कैप्टन विलफोर्ड थे। चेरी फारसी के विद्वान थे, डेविस भारतीय ज्योतिष में दखल रखते थे और विलफोर्ड की संस्कृत पढ़ने में बड़ी रुचि थी। विलफोर्ड इस कमेटी के सेक्रेटरी नियुक्त किये गये। कैप्टन विलफोर्ड पहले अंग्रेजी जिलों और अवध राज के बीच की पैमाइश के लिए नियुक्त किये गये थे। पर जब इस काम में नवाब के आदमी रोड़े अटकाने लगे तब डंकन ने सर जॉन शोर को लिखा कि वे विलफोर्ड को बनारस में रहकर अपना अध्ययन समाप्त करने की आज्ञा दे दें। सर जॉन शोर ने डंकन की यह बात मान ली और विलफोर्ड को उनकी तनखाह के अलावा पढ़ने के लिए सामग्री इत्यादि इकट्ठा करने के लिए छह महीने का वजीफा भी स्वीकार कर लिया।

1801 में कॉलेज की कमेटी ने, जिसमें चेरी और डेविस की जगह नीव और डीन आ गये थे, रिपोर्ट भेजी की काशीनाथ द्वारा बतायी गयी विद्यार्थियों की तो दो सौ संख्या में पचास तो बराबर पाठशाला में आते हैं लेकिन पचास से सत्तर तक महीने में केवल एक या दो बार आते हैं और, बाकी तो केवल नाम ही के विद्यार्थी हैं। पाठशाला में काशीनाथ ने बारह की जगह ग्यारह ही पंडित रख छोड़े थे और बारहवें पंडित का फर्जी नाम देकर उसका वेतन खुद हड़प जाते थे। कमेटी के आदेशानुसार काशीनाथ ठीक तौर से वेतन का चिट्ठा भी नहीं बनाते थे। इन्हीं सब कारणों से कमेटी ने उनको निकाल बाहर किया और उनकी जगह जटाशंकर पंडित को पाठशाला का प्रधानाध्यापक नियुक्त किया। इस तरह बाहर निकाल दिये जाने पर काशीनाथ ने लॉर्ड मार्निंगटन के पास एक अर्जी भेजी, जिसमें अपना दुखड़ा रोया।

इसमें शक नहीं की वे पाठशाला के कामकाज में बड़ी गड़बड़ी करते थे, पर इस गड़बड़ी का बहुत कुछ श्रेय उनके नालायक साथियों पर भी था। 1798 में ही काशीनाथ ने गवर्नर जनरल से ही शिकायत की थी कि पाठशाला के पंडितों में से पाँच पंडित अमलों और रईसों के यहाँ बराबर आया-जाया करते हैं जिससे पाठशाला के कामकाज में बड़ा विघ्न पड़ता है।

इस बात की शिकायत उन्होंने बनारस के अमलों से भी की थी पर इसमें उन्होंने दखल देने से साफ इनकार किया। ऐसा मालूम पड़ता है कि पाठशाला के पंडित बनारस की प्रथा के अनुसार विद्यार्थियों को अपने घर पर ही पढ़ाया करते थे जिससे पाठशाला के नियमों का उल्लंघन होता था। डंकन के आने के बाद तो कालेज के नियम और ढीले पड़ गये।

पाठशाला के आरम्भिक अध्यापकों में रामप्रसाद तर्कालंकार अपनी नियुक्ति के समय अस्सी वर्ष के थे। वीरेश्वर सुब्बा शास्त्री और जटाशंकर यह चाहते थे कि उनके छात्रों की वृत्तियाँ उन्हीं को मिले पर ऐसा करने से कमेटी ने साफ इनकार कर दिया। मि. बरुकरी जो 1804 में कमेटी के सभापति थे उनका विचार था कि जटाशंकर में इतनी योग्यता नहीं है कि वे पाठशाला के आचार्य हो सकें। 1813 में वीरेश्वर पंडित, विश्वनाथ पंडित और जयराम भट्ट के विरुद्ध शिकायतें की गयीं। इन बातों से साफ पता लग जाता है कि काशीनाथ की असफलता का कारण केवल उनकी अयोग्यता ही नहीं बरन उनके साथियों में भी गड़बड़ी थी फिर रुपये पैसे के मामले में गड़बड़ी के लिए वे अवश्य दोषी थे।

काशीनाथ के आचार्य पद से हटा दिये जाने पर भी पाठशाला के प्रबंध में किसी तरह की उन्नति नहीं हुई। उनके उत्तराधिकारी जटाशंकर एक साधारण श्रेणी के आदमी थे। कमेटी के सभासद भी कालेज के कामों में दिलचस्पी नहीं लेते थे। इन सब बातों से यही पता चलता है कि जिस ध्येय को लेकर डंकन ने इस कालेज की स्थापना की थी उसका कोई परिणाम नहीं निकला।

1812 में कॉलेज की पुर्नयोजना हुई, जिससे 1815 तक उसकी दशा में बहुत कुछ सुधार हो गया। 1820 में केप्टन फेल कॉलेज कमेटी के सेक्रेटरी चुने गये। वृत्ति पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या साठ निर्धारित कर दी गयी, पर बिना वृत्ति के दूसरे विद्यार्थी भी कॉलेज में शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। 1823 में विद्यार्थियों की संख्या बढ़कर दो सौ हो गयी। 1824 में केप्टन फेल की मृत्यु हो गयी। 1825 में इस पाठशाला का आँखों देखा वर्णन विशप हेबर ने किया। उनका वर्णन यथावत् नीचे उद्धृत है।

"विद्यालय दो चौक की ऊँची इमारत में है। यह सर्वदा शिक्षकों और विद्यार्थियों से भरा रहता है। विद्यालय में बहुत सी कक्षाएँ हैं जिनमें विद्यार्थी पढ़ना लिखना, भारतीय – गणित, फारसी, हिंदू कानून, वेद, संस्कृत और ज्योतिष सीखते हैं। विद्यालय में दो सौ विद्यार्थी हैं, और उनमें बहुत से मुझे पाठ सुनाने आये। दुर्भाग्यवश थोड़ी ज्योतिष और फारसी के सिवा मैं कुछ न समझ सका। ज्योतिष के पंडितों ने हिंदू ज्योतिष के सिद्धांतानुसार बने गोले दिखलाये इनमें उत्तरी ध्रुव पर मेरु पर्वत और दक्षिणी ध्रुव पर एक कछुआ जिस पर पृथ्वी आश्रित है, थे। पंडित जी ने बताया कि दक्षिण गोलार्ध बसने योग्य नहीं है। उन्होंने यह भी बतलाया कि

प्रतिदिन सूर्य पृथ्वी के कितने सौ चक्कर मारता है और उसी गति से वह कैसे नक्षत्रों के भी चारों ओर फिर आता है पाठशाला में अंग्रेजी और यूरोपीय ज्योतिष पढ़ाने की कई बार कोशिश की गयी पर इस विद्यालय के विगत प्रधान शिक्षक इसके इसलिए विरोधी थे कि ऐसा करने से संस्कृत शिक्षा पर व्याघात पहुँचने तथा पंडितों की धार्मिक भावनाओं पर धक्का लगने का डर था ।

" दूसरे दिन मैं बनारस की सैर करने घोड़े पर निकला । विद्यालय का एक छोटा विद्यार्थी मेरे पीछे दौड़ा और हाथ जोड़ कर अपना पाठ सुनाने की अनुमति चाही जिसे मैं कल नहीं सुन सका था । मैंने अपना घोड़ा रोक दिया और लड़का संस्कृत के श्लोक सुनाने लगा । जब मैंने उसको कुछ पैसे दिये तो उसने कुछ फूल दिये और बातचीत करता हुआ मेरे साथ तब तक आगे पढ़ता रहा जब तक भीड़ ने हम दोनों को अलग नहीं कर दिया । जब वह अपना पाठ पढ़ पढ़ गा रहा था तब आस पास के लोग उसको शाबाशी दे रहे थे । जिस तरह से श्लोक सुन कर वे मेरी तरफ इशारा कर रहे थे उससे यह पता लगता था कि श्लोक मेरे संबंध में थे । शायद यह अभिनंदन पत्र था जो जल्दी में तो कल मुझे न मिल सका पर आज दे ही दिया गया ।"

बनारस में अंग्रेजी शिक्षा का प्रारम्भ—

1824 में कैप्टन फेल की मृत्यु के बाद कैप्टन थोसबाई उनकी जगह संस्कृत पाठशाला के सेक्रेटरी नियुक्त किये गये । उन्होंने छात्रवृत्तियों की संख्या सौ (100) कर दी । 1829 में उन्होंने एक अंग्रेजी स्कूल खोलने पर विशेष ध्यान दिया और बनारस में एंग्लो इंडियन सेमीनरी स्कूल के नाम से एक अंग्रेजी स्कूल 1830 में खुल ही गया ।¹⁷ 1836 में इस स्कूल का नाम गवर्नमेंट स्कूल रखकर एक अंग्रेजी शिक्षक की नियुक्ति कर दी गयी । 1835 में कुछ काल के लिए इस स्कूल के प्रधानाध्यापक मि. निकोल्स बनाये गये । उनके समय में विद्यार्थियों की संख्या 296 थी पर 1838 में फारसी की कक्षाएँ बन्द कर देने से तथा छात्रवृत्तियों में कमी कर देने से छात्रों की संख्या घट गयी । 1844 में इस स्कूल का प्रबन्ध स्थानिक सरकार के जिम्मे कर दिया गया और इसके प्रिंसिपल मि. म्योर बना दिये गये । 1846 में मि. बैलंटाइन स्कूल के प्रिंसिपल हुए । इन्हीं के काल में 1852 में स्कूल की इमारत बनकर तैयार हुई । इस स्कूल का नक्शा मेजर किटो ने 1846 में बनाया था । इसके बनाने में तेरह हजार पाउन्ड की लागत बैठी ।

बनारस में अंग्रेजी शिक्षा का बहुत कुछ श्रेय राजा जयनारायण घोषाल को है । राजा जयनारायण घोषाल कुछ इने गिने उन आदमियों में थे जिनका यह विश्वास था कि बौद्धिक उन्नति के लिए भारतीयों को अंग्रेजी पढ़नी आवश्यक है । सितम्बर 1814 में जब लार्ड हेस्टिंग्स बनारस आये तब जयनारायण स्कूल की नींव पड़ गयी थी । हेस्टिंग्स अपने जर्नल में कहते हैं कि राजा जयनारायण घोषाल ने अपनी जमीन के टुकड़े कर स्कूल की इमारत बनवानी आरम्भ कर दी थी । उनकी यह इच्छा थी कि गवर्नमेंट द्वारा नियुक्त ट्रस्टियों को यह इमारत एक अंग्रेजी स्कूल चलाने के लिए दे दी जाय । इस काम के लिए उन्होंने चौबीस सौ रुपये सालाना आमदनी की जमीन और सरकारी कागज भी इसलिए दे दिये थे कि इस आमदनी से एक अंग्रेजी अध्यापक और उसके सहायकों को वेतन दिया जा सके । इस दान में उनकी केवल एक ही शर्त थी कि उसकी आमदनी का रुपया किसी दूसरे काम में न लगाया जाय । इस शर्त को हेस्टिंग्स ने भी स्वीकार कर लिया ।

विशप हेबर ने 1825 में इस स्कूल को देखा और इसका मुआयना किया । उनका कहना है कि राजा जयनारायण घोषाल को बनारस के पादरी मि. कोरी ने करीब-करीब ईसाई बना लिया था । बनारस में भी यह अनुश्रुति है कि राजा जयनारायण घोषाल ईसाई हो गये थे, पर डा. मोतीचन्द्र उक्त तथ्य को अस्वीकार करते हुए कहते हैं कि उनके ईसाई होने का गप्प केवल इसलिए चल पड़ी कि वे और उनके पुत्र काशी शंकर समाज सुधारक थे और 18वीं सदी

की दुनिया में कोई भी समाज सुधारक हिन्दुओं की दृष्टि में ईसाई अथवा म्लेच्छ था। हेबर के अनुसार जयनारायण स्कूल में उस समय 140 विद्यार्थी, एक अंग्रेजी के मास्टर और एक फारसी पढ़ाने के लिए मुन्शी थे। पाठशाला का प्रबन्धन एडलिंगटन नाम के एक पादरी देखते थे। विद्यार्थी अंग्रेजी बाइबिल, अंग्रेजी इतिहास, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी पढ़ते थे। उन्हें गणित और भूगोल का भी ज्ञान कराया जाता था। पाठशाला के विद्यार्थियों में अधिकतर मध्यम वर्ग के ब्राह्मण छात्र थे।

19वीं सदी के मध्य भाग में बनारस में कई मिशन खुले जिन्होंने शहर में ईसाई धर्म और अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार किया। पर इन्हें अपने ध्येय में बनारस की कट्टरता के कारण अधिक सफलता न मिल सकी।

उन्नीसवीं सदी में बनारस में शिक्षा

7 जून 1845 को नार्थ वेस्टर्न प्राविंस सरकार के सेक्रेटरी जे. थॉर्नटन ने बनारस के मजिस्ट्रेट को वहाँ की देशी शिक्षा के सम्बन्ध में एक पत्र लिखा जिसमें उनका ध्यान इस ओर दिलाया गया कि बनारस में शिक्षा का प्रायः अभाव है। जमीन के नये बंदोबस्त होने की वजह से यह आवश्यक था कि रियाया ऐसी शिक्षा प्राप्त करे जिससे उसे पटवारी के कागज पत्र समझने में सुविधा हो। इसके लिए पढ़ना-लिखना, गणित और पैमाइश की शिक्षा आवश्यक है। इस शिक्षा के बाद साहित्य की शिक्षा आती थी। प्राथमिक शिक्षा के लिए देशी पाठशालाओं की मदद की जा सकती थी और उनका पाठ्यक्रम सुधारा जा सकता था। इसके लिए जनता में उत्साह बढ़ाने की आवश्यकता थी। सरकारी प्रोत्साहन से गाँवों में ऐसी पाठशालाएँ चलाई जा सकती थीं जिनमें जनता द्वारा शिक्षक नियुक्त हों। ऐसी सम्भावना थी कि कुछ ही दिनों में ऐसे शिक्षक जनता के सेवक बन जाएँ और उनका वेतन गाँवों की मालगुजारी से वसूला जा सके। ऐसे शिक्षकों के प्रोत्साहन के लिए खास इनाम तथा पुस्तकें देना आवश्यक था। पाठशालाओं के लिए प्राथमिक पुस्तकें तैयार हो रही थीं। कलेक्टर को यह भी रियायत दी गयी थी कि वह तत्कालीन शिक्षा के बारे में विवरण प्राप्त करें। इसके लिए वह तहसीलदारों की सहायता ले सकता था। प्रत्येक ग्राम की पाठशालाओं की संख्या इकट्ठा करना आवश्यक था।

उपर्युक्त आदेश के अनुसार बनारस जिले की पाठशालाओं का विवरण इकट्ठा किया गया। इस विवरण से सन्तुष्ट न होते हुए भी बनारस के कलेक्टर ए. शेक्सपीयर ने 23 अक्टूबर 1847 को इसे लेफ्टिनेंट गवर्नर के पास रवाना कर दिया। विवरण से पता चलता है कि बनारस की ग्रामीण पाठशालाएँ प्रायः दूसरों के घरों में लगती थीं तथा शिक्षकों का वेतन इतना कम था कि उससे उनका निर्वाह मुश्किल था। पाठशालाओं की कुल संख्या 173 थी, जिनमें 121 कायस्थ थे। शिक्षा में फारसी का मुख्य स्थान था तथा देशी भाषाओं की शिक्षा भले घर के लड़के अपने घर पाते थे। हिसाब-किताब की शिक्षा का कोई विवरण उपलब्ध नहीं था। नगर में कुछ पाठशालाएँ थीं जिनमें हिन्दी, महाजनी और बही-खाता पढ़ाया जाता था। खत के साथ शेक्सपीयर ने लेफ्टिनेंट गवर्नर को शिक्षा-सम्बन्धी नोटिफिकेशन का एक मसविदा भेजा जिसमें वे ही बातें कही गयी थीं जिनका उल्लेख थॉर्नटन के पत्र में हो चुका है। इस परिपत्र की कुछ कापियाँ बनारस कॉलेज के प्रिंसिपल डाक्टर बेलंटाइन के पास भी भेजी और उन्हें लोगों की राय के लिए वितरित करने को कहा। बनारस कालेज के हेडमास्टर जी. निकल्स ने राय दी कि अपनी भाषा में शिक्षा देने की योजना सराहनीय है पर बिना अच्छी देखभाल के ऐसी योजना का सफल होना सम्भव नहीं है। उन्होंने यह भी मत दिया कि देशी इंस्पेक्टरों से यह काम सम्भव नहीं है। उनकी राय थी कि एक देशी इंस्पेक्टर 80 रुपये महीने पर नियुक्त कर दिया जाय तथा उन पाठशालाओं की निगरानी बनारस कॉलेज के अफसरों के अधीन कर दी जाय।

ग्रामीण विद्यालयों के अध्यक्ष डी. ट्रेशम ने 29 अप्रैल 1848 के अपने एक पत्र में बनारस के कलेक्टर को लिखा कि शिक्षा के उपाध्यक्षों के तीन कर्तव्य हैं यथा – विद्यालयों में छपी किताबों का प्रवेश, शिक्षा में समानता लाना, तथा शिक्षा की सफलता अथवा असफलता के बारे

में मासिक रिपोर्ट। पाठ्यक्रम में रामसरन दास द्वारा लिखी चार प्राथमिक पुस्तकें रखने का सुझाव रखा गया। वे पुस्तकें चार श्रेणियों के विद्यार्थियों के लिए रखी गयीं तथा सबक कैसे पढ़ाए जायें इसका भार उपाध्यक्षों पर डाला गया। उन्हें डायरी रखने का भी आदेश था। पर बनारस के कलेक्टर देशी पाठशालाओं की रिपोर्ट से इसलिए सन्तुष्ट नहीं हुए क्योंकि उसमें केवल बनारस के हिन्दी और फारसी स्कूलों के ही उल्लेख तथा संस्कृत की पाठशालाएँ और मिशनरी स्कूल जैसे जयनारायन और चर्च मिशन छोड़ दिये गये थे तथा घर में ही शिक्षा पाने वालों का उसमें उल्लेख तक नहीं था। डी. ट्रशम के एक पत्र से पता चलता है शिक्षा विभाग के सबइंसपेक्टरों को काफी मुसीबत उठानी पड़ती थी, लोगों की शिक्षा के प्रति बड़ी खामख्याली थी और वे अपने बच्चों को उर्दू और हिन्दी में प्राथमिक शिक्षा देने तक को तैयार नहीं थे। शिक्षाध्यक्ष और उनके सहायकों का अधिकतर समय उनकी खामख्याली दूर करने में ही बीतता था। पाठशालाएँ खोलने के सम्बन्ध में उनका ख्याल था कि अगर सरकार उन्हें खोले तो वे अपने बच्चों को पढ़ाने को तैयार हैं। पर इस सम्बन्ध में शिक्षित अध्यापकों की कमी और उनका अल्प-वेतन बड़ी भारी बाधा थी। इस सम्बन्ध में सहायक शिक्षाध्यक्षों के नाम बनारस के कलेक्टर श्री मेकलियड ने कुछ हिदायतें जारी कीं (वही, पृ. 210 से)। उनसे कहा गया कि "जनता तथा जमींदारों को पाठशालाएँ खोलने के लिए प्रोत्साहित करें। निरीक्षकों का कर्तव्य होना चाहिए कि वे देखें कि गाँव वालों ने शिक्षा का महत्व कहाँ तक समझा। शिक्षा मुफ्त होनी चाहिए, जो विद्यार्थी उनसे फीस दे सकें उनसे फीस वसूल करनी चाहिए तथा मुस्तैद शिक्षकों को इनाम देना चाहिए। शिक्षा के तरीके में उन्नति के लिए प्रोत्साहन उन्हीं को देना चाहिए जो उसके लायक हैं, जोर जबर्दस्ती से काम नहीं चलने का। उन्हें लोगों को समझाना चाहिए कि शिक्षा का उद्देश्य काम की बातों को सिखाना था जिनकी दैनिक जीवन में आवश्यकता पड़ती है जैसे पढ़ना-लिखना, हिसाब-किताब इत्यादि। निरीक्षकों को चाहिए कि सलाह माँगने पर वे शिक्षकों को रामसरनदास की चार पुस्तकें पढ़ाने तथा सवाल-जवाब की पद्धति चलाने को कहें तथा डायरी रखने का सुझाव रखें। यह भी आवश्यक था कि उपाध्यक्ष शिक्षकों को ठीक-ठाक शिक्षा-पद्धति का ज्ञान करावें। उपाध्यक्षों को ग्रामीण शिक्षकों की उनके विद्यार्थियों के सामने इज्जत करने को कहा गया।"

आधुनिक काल में बनारस की शिक्षा प्रसार में जमींदारों ने कहाँ तक सहायता की इसका तो विशेष पता नहीं चलता पर राजा ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह ने 1,200/- सालाना शिक्षा प्रसार के लिए 1856 में बाँध दिया। गवर्नर जनरल के एजेंट एच. सी. टकर ने इस बात की सरकार को सूचना दे दी और इस बात की प्रार्थना की कि एक शुक्का निकाल कर जमींदारों से ग्रामीण विद्यालयों के लिए धन की अपील की जाय।

सन्दर्भ —

1. बर्नियर, फ्रांकोआ, ट्रवेल्ल्स इन दि मोगल एंपायर, एस.डी.1656-1668(अनुवाद) ए. कांस्टेबल, लंदन,1891
2. डॉ. मोतीचन्द्र, काशी का इतिहास
3. हेबर,बिशप रेजिनाल्ड 1849 नैरेटिव आफ ए जर्नी थू दि अपर प्रोविन्सेज आव् इण्डिया फ्राम केलकटा टू बाम्बे, 1824-25,कैरे ली एण्ड कैरे फिलाडेल्फिया एण्ड जान मरे,लंदन, टू वा वाल्यूम्स
4. शर्मा, हेमन्त, भारतेन्दु ग्रन्थावली- भारतेन्दु समग्र, हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन प्रा.लि., वाराणसी 2000
5. शास्त्री, बड़े भाऊ, काशी इतिहास